



गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में कलियुग की अवधारणा का अध्ययन

Mukesh Chandra

Research Scholar Sunrise University Alwar

Dr. Sheshlata Yadav

Associate Professor, Sunrise University Alwar

सारांश

कलियुग की अवधारणा को किसी सीमा में बाँध पाना असम्भव कार्य है, किन्तु जब भी 'कलियुग' शब्द की चर्चा कहीं पर आती है तो मानस पटल पर सदैव एक अधम युग का चित्र उभर जाता है। कलियुग कह देने मात्र से मानव मन, बुद्धि, दुःख और संकट के जिस गहराई तक पहुँचता है वह विचारणीय है। कहने का तात्पर्य यह है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर कहने से मानव मन में कोई विशेष उलझन नहीं पैदा होती, किन्तु कलियुग कह देने से तुरन्त पूरा का पूरा भाव ही परिवर्तित हो जाता है। कुछ विद्वान् ऐसा मानते हैं कि भारतीय संस्कृति के मूल्य अपरिवर्तनशील हैं। ये ऐसे विद्वान् हैं जो उन समाजशास्त्रियों से प्रभावित हैं जिनकी दृष्टि में औद्योगिक क्रान्ति आने के बाद भी समाज में जाति व्यवस्था कायम है, की अवधारणा मानते हैं। प्राचीन भारतीय मनीषा इससे अलग है। प्राचीन मनीषियों की दृष्टि में भारतीय समाज और उसके मूल्य परिवर्तनधर्मी थे। एक रक्षक के रूप में राज्य की स्थापना के सम्बन्ध में उनकी कल्पना में इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है। वेदोत्तरकालीन समाज की जो सबसे बड़ी उपलब्धि थी वह थी वर्णव्यवस्था आधारित धर्म। किन्तु भारतीय मनीषा धर्म में भी परिवर्तन मानती थी। भारतीय चिन्तन परम्परा यह मानती है कि अवसर आने पर धर्म-अधर्म में और अधर्म-धर्म में परिवर्तित हो जाता है। "शान्ति पर्व के एक-एक श्लोक के अनुसार देश और काल के अनुरूप धर्म-अधर्म और अधर्म-धर्म बन जाता है। यह अवश्य है कि इस चिन्तन में परिवर्तन को विकास की प्रक्रिया के रूप में नहीं, प्रत्युत कालचक्र की गति के रूप में देखा जाता है।"

मुख्यशब्द— गोस्वामी तुलसीदास, काव्य, कलियुग की अवधारणा, वेदोत्तरकालीन समाज, भारतीय चिन्तन परम्परा

प्रस्तावना

कलियुग के साथ भी यह समस्या है। इसे भी विकास की प्रक्रिया के रूप में न देखकर कालचक्र की गति के रूप में देखा जाता रहा है। प्रत्येक युग में धर्म के स्वरूप में परिवर्तन होता चला गया। सतयुग ऐसा मान्य युग है जहाँ सुख-वैभव प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देते। धर्म के चारों चरण अपनी पूर्णता में विराजमान हैं। यह एक सुरम्य वातावरण का युग है, ऐसा मनीषी लोग स्वीकार करते हैं। लेकिन भविष्य में आने वाले अन्य युगों में धर्म अपना चरण नष्ट करता गया, जिसके सन्दर्भ में द्रष्टव्य है— "कृतयुग शुद्ध आनन्द और उल्लास का युग है— बहुत कुछ रूसो की कल्पना की प्राकृतिक अवस्था के समान। इस युग में किसी वर्ण के मन में अधर्म का विचार नहीं उठा। फिर

इसमें कुछ दोष आए और तब त्रेता का प्रादुर्भाव हुआ। त्रेता में धर्म ने अपना एक पद खो दिया। तब भी इस युग की अभिव्यक्ति आदर्श रामराज्य के रूप में ही हुई, जिसका वर्णन प्रथमतः वाल्मीकि ने किया और जिस वर्णन को बाद में तुलसीदास ने आगे बढ़ाया। इस राज्य में चतुर्दिक सुख-समृद्धि छापी हुयी थी और ब्राह्मण व्यवस्था की संस्थाएँ सुचारु रूप से काम करती थीं। त्रेता के उपरान्त द्वापर आया। इसी युग में महाभारत का युद्ध हुआ। अब धर्म का एक और पद चल गया लेकिन तब भी धर्मराज युधिष्ठिर जैसा व्यक्ति इस युग का प्रतिनिधि पुरुष माना जाता है।² कलियुग के सन्दर्भ में आगे पुनः लिखा गया है कि— "धर्म के क्रमिक ह्रास के अन्तिम चरण में कलियुग का प्रवेश होता है। अब धर्म का एक ही पद शेष रह जाता है।"³ अर्थात् कलियुग तक आते-आते धर्म अपना स्वरूप बदल चुका



होता है। उसके तीन चरण समाप्त हो गए हैं। कलियुग के सन्दर्भ में धर्म के विघटन की जो अवधारणा शास्त्रानुमोदित हैं वही गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रचना कौशल में समेटने का प्रयास किया है। कलिकाल का वर्णन लगभग सभी पुराण ग्रन्थों में विस्तृत रूप से मिलता है। इसके काल निर्धारण के सन्दर्भ में कोई निश्चित तिथि निर्धारित करना बिल्कुल असंभव है फिर भी कुछ विद्वान नन्दों और मौर्यों से लेकर आंध्र शासकों के शासनकाल की समाप्ति तक माना है। "स्पष्ट है कि इस काल-निर्धारण का आधार प्रत्येक वर्णन की अन्तर्वस्तु है। किन्तु इन वर्णनों का उपयोग ऐतिहासिक प्रयोजनों के लिए करने में हाजरा के मन में भी संकोच है। एक स्थल पर वे नन्दों और मौर्यों से लेकर आंध्र शासन की समाप्ति तक के काल को कलियुग बताते हुए उस काल में शूद्र राजाओं के अस्तित्व को रेखांकित करते हैं।" 4 सामाजिक व्यवस्था के आधार पर कलियुग की जो स्थापना की गयी, उसमें सामाजिक नियमों के उल्लंघनकर्ता की दृष्टि से कलियुग को देखा गया है। गैर ब्राह्मणवादी व्यवस्था और कर्मवाद की अवहेलना एवं आडम्बरवादी सम्प्रदायों द्वारा प्रबल विरोध तथा विदेशी शासकों का वर्चस्व आदि इसके (कलियुग के) लक्षण के रूप में देखे जाते हैं। गैर ब्राह्मणवादी व्यवस्था से तात्पर्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था, जहाँ विभिन्न वर्ण के लोग धर्मशास्त्रानुगामी कर्मों से दूर हो रहे हों। इन कर्मों (शास्त्रानुगामी) के सम्बन्ध में ब्राह्मणीय दृष्टि रूढ़ और कठोर नहीं है। समय और परिस्थिति के आधार पर नियमों में परिवर्तन होता गया जो अनिवार्य भी था और उचित भी। इस काल की गति परम्परा द्वारा अवरूद्ध नहीं होती। विद्वानों ने कलिकाल का जो लक्षण प्रस्तुत किया है वह विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा आक्रान्त देशकाल के साथ-साथ अस्थिरता, सामाजिक तनावों का प्राबल्य, पाखण्डपूर्ण सम्प्रदायों का वर्चस्व था। कलिकाल की जो विस्तृत काल-सीमा है उसमें उपर्युक्त लक्षणों की अधिकता है। विभिन्न विद्वानों ने पुराणों एवं शास्त्रों के आधार पर जिस कलि सीमा को प्रस्तुत किया है उसके सन्दर्भ में एक कथन द्रष्टव्य

है- "हाजरा ने कलि वर्णनों को चार कालों से जोड़ा है, किन्तु हम मुख्यतः उस वर्णन पर विचार करेंगे जिसका काल वे तीसरी और चौथी सदी मानते हैं। जहाँ हम मध्यकाल में विकसित कलिवर्णों पर गौर नहीं करेंगे। किन्तु साथ ही अपनी विवेचना के दायरे को हम वायु, ब्रह्माण्ड तथा विष्णु पुराणों में उपलब्ध कलि अथवा युगान्त के वर्णनों तक सीमित नहीं रखेंगे, बल्कि महाभारत के 'आरण्यक' तथा 'शान्ति' पर्वों के वर्णनों पर भी ध्यान देंगे, क्योंकि ये वर्णन प्रारम्भिक पुराणों से मेल खाते हैं और ये हैं भी उसी काल के।" 5 आगे का कथन पुनः स्पष्टीकरण करता है- "यह कुषाण तथा सातवाहन राज्यों के क्रमिक पतन और अवसान तथा गुप्त शासन की पूर्ण प्रतिष्ठा के बीच का काल था, जब राजनीतिक स्थिरता का अभाव चल रहा था। 'शान्ति पर्व' में चातुर्युग का वर्णन इसी काल का माना जा सकता है। इस वर्णन में समाजव्यवस्था का राजनीति व्यवस्था से अभिन्न सम्बन्ध दिखाया गया है। यह बात प्रथम तीन युगों पर तो लागू होती ही है, किन्तु कलियुग पर विशेष रूप से लागू होती है।" 6 इस तरह से पुराणों और शास्त्रीय ग्रन्थों को आधार मानकर कलिकाल की सीमा-निर्धारण करने का प्रयास किया गया। तद्युगीन सामाजिक एवं राजनीति व्यवस्था को उससे जोड़कर प्रस्तुत करने की कोशिश काफी हद तक सही ठहरती है। समय पर समाज को परिवर्तन के दुःख-दर्द की व्यवस्था से गुजरने के बाद कलिकाल का संकट सामने प्रस्तुत होता दिखायी देता है। भारतीय इतिहास की दो सदियों (तीसरी और चौथी) के प्रारम्भ में लिखे गए ग्रन्थों से कलिकाल की जो विशेषताएँ मिलती हैं। उनमें 'वर्णसंकर' का प्रमुख स्थान रहा है। गोस्वामी तुलसीदास भी कलिकाल वर्णन के समय 'वर्णसंकर' की काफी चर्चा करते हैं। हालांकि कलिकाल की अन्य विशेषताओं में शूद्रों तथा ब्राह्मणों के बीच द्वन्द्व, कर के भार से पीड़ित जनता, परिवार और सम्पत्ति की असुरक्षा, चोरी-डकैती, कलह आदि का भी जिक्र है। ये सब कुवासनाएँ एवं अन्तर्द्वन्द्व मिलकर सामाजिक



अव्यवस्था को उत्पन्न करती हैं। यही कलियुग की उपलब्धि है। यही तदयुगीन सामाजिक संकट के लक्षण हैं। इसके सन्दर्भ में एक कथन द्रष्टव्य है— “करभार और शूद्र—ब्राह्मण विरोध संकट के प्रमुख कारण और वर्णसंकर उसका प्रमुख लक्षण था। ‘आरण्यक पर्व’ के अनुसार युगान्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, सब एक वर्ण के हे जायेंगे। ये तीनों आपस में मिलकर शूद्र बन जायेंगे। उसी में यह भी कहा गया है कि ‘अन्त्य हो जायेंगे। इसका अर्थ यह हो सकता था कि अस्पृश्य जन क्षत्रियों और वैश्यों के कर्म करने लगेंगे। ‘अयोध्या काण्ड’ में अराजक का वर्णन करते हुए कहा गया है कि राजदण्ड के प्रयोग (राजदण्डनिपीडितः) के अभाव में नास्तिक लोग वर्णाश्रम की मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं। कई अन्य पाठों में भी वर्णसंकर का वर्णन किया गया है, जिसका अर्थ सामान्यतः वर्णों के बीच के ‘रोटी-बेटी’ व्यवहार—विषयक वर्जनाओं का उल्लंघन तथा धर्मशास्त्र—विरुद्ध रीति से अवैध सन्तान उत्पन्न करना लगाया जाता है।”⁷ कलियुग के लक्षणों के सन्दर्भ में जो बातें उपर्युक्त कथन में कही गयी हैं उनमें कई तो वर्तमान अवधि में देखने को मिलता है। ‘वर्णाश्रम की मर्यादा’, जिसे शास्त्रकारों ने समाज के नैतिक नियमों से बाँध दिये थे वे भी वर्तमान समय में ह्रास होते जा रहे हैं। ‘सन्तानोत्पत्ति’ की अवैधता है। कलियुग में राजघरानों का नियम सा बन गया है।

कलियुग की अवधारणा :

गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसका जिक्र किया है कि कलिकाल के प्रभाव से शूद्र ब्राह्मणाचार को अपना रहे हैं और ब्राह्मण शूद्राचार को। अर्थात् जो कार्य ब्राह्मण करते थे वह अब शूद्र कर रहे हैं और जो शूद्र करते थे वह अब ब्राह्मण कर रहे हैं। कलियुग के प्रभाव से ब्राह्मण जप—तप, संयम आदि का त्याग कर देगा तथा शूद्र उनकी वेदविहित क्रियाओं को अपना लेगा। इतना ही नहीं शूद्रों का और वृषलों का अत्याचार इतना ज्यादा बाड़ी भटकेंगे— “आरण्यक पर्व के श्लोकों में ब्राह्मणों पर शूद्रों के अत्याचार का वर्णन करते हुए बताया गया है

कि भय से त्रस्त और वृषलों से उत्पीड़ित द्विज जन आर्तनाद करेंगे और कहीं काई रक्षक न पाकर पृथ्वी पर भटकते हुए नदियां, पहाड़ों और जनपदों में शरण लेंगे। आगे के श्लोकों के अनुसार दस्युओं से आतंकित और कुराजाओ के करों के भार के पीड़ित श्रेष्ठ ब्राह्मण भी हताश होकर शूद्रों के सेवकों के रूप में अशोभनीय कार्य करेंगे। पूरे वातावरण से यह आभास होता है कि शूद्रों ने राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर ब्राह्मणों की स्थिति दयनीय बना दी। इन श्लोकों की चाहे जो व्याख्या की जाये तीसरी—चौथी सदियों के आस—पास कलियुग के वर्णन में ब्राह्मण—शूद्र वैर का सामान्य स्वर स्पष्ट है।”⁸ उपर्युक्त कथन मानस में जो विम्ब प्रस्तुत करता है उससे स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास का कलि समाज उनके पूर्ववर्ती ग्रन्थों में वर्णित कलि समाज से भिन्न नहीं है। कलियुग में वर्णसंकर एवं वर्ण—संघर्ष दोनों अपनी प्रबलता से प्रस्तुत होते हैं। कलियुग में वर्ण संघर्ष के दो स्पष्ट रूप दिखायी देते हैं— एक ब्राह्मणों का शूद्रों से तथा दूसरी ओर ब्राह्मणों—क्षत्रियों का वैश्यों एवं अन्य लोगों से। संघर्ष की यही गाथा कालान्तर में चलकर आधुनिक साहित्यकारों के यहाँ भी दिखायी देता है। कथाकार प्रेमचन्द इसके प्रमुख हस्ताक्षर हैं। प्रेमचन्द के साहित्य में भी संघर्ष उसी स्वरूप में विद्यमान है जिस स्वरूप में ऊपर उसकी चर्चा की गयी है। उनके चर्चित उपन्यास ‘गोदान’ में ब्राह्मणों एवं शूद्रों का जो संघर्ष हुआ दिखायी देता है, वह किसी भी प्रकार से कलियुग वाले वर्ण—संघर्ष से अलग नहीं है। कलिकाल की सामाजिक अव्यवस्था के अन्तर्गत उपर्युक्त संघर्ष भी आता है। सामाजिक संकट के दायरे में ऐसे सभी संघर्ष आते हैं जो उसमें उथल—पुथल मचाते हैं। सामाजिक संस्थाएँ भी अपने अस्तित्व को समाप्त करने के करीब पहुँच चुकी हैं, जो नैतिक नियमों का अनुपालन करवाती थीं। अब बात आती है सामाजिक संकट की। सामाजिक संकट कोई नवीन अवधारणा न होकर बल्कि परिस्थिति परिणाम है। गोस्वामी तुलसीदास की संवेदना का सीधा परिचय मध्यकाल के समाज से ही होता है। उनका कवि मन आहत होता है। तदयुगीन



इतिहास जिन स्रोतों से प्राप्त होता है उससे ज्ञात होता है कि कई-कई ग्रन्थों से तथ्यों को बदलकर प्रस्तुत किया गया है। चूँकि रचनाकार जिस संवेद्य विषय को उठाता है उसमें मिथक के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्य भी उपलब्ध होते हैं।

आदर्श राज्य की कल्पना और तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास भक्ति के माध्यम से रचना संसार में प्रस्तुत होते हैं। इनकी रचनाशीलता की दो उपादेयता एक भगवद्भक्ति और दूसरा मानवधर्म की स्थापना सहज ही सिद्ध है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्थापित करने का श्रेय लगभग सभी भक्त कवियों को जाता है, किन्तु मानवधर्म में निहित मर्यादा को जितनी बेबाकी से तुलसी प्रस्तुत करते हैं शायद कोई किया हो। तुलसी राजधर्म और लोकधर्म दोनों में तारतम्य स्थापित करके चलने वाले कवि थे। केवल राजधर्म ही सर्वोपरि हो ऐसा नहीं। राजधर्म, लोकधर्म के लिए ही काम आए और दोनों एक दूसरे से बाधित न हों, ऐसी कल्पना थी गोस्वामी जी की। गोस्वामी तुलसीदास का प्रतिपाद्य विषय राजधर्म की प्रस्तुति नहीं थी। किन्तु लोकधर्म की प्रस्तुति के लिए राजधर्म को फलक पर लाना पड़ा। राजा वही है जो प्रजा का पालन कर सके। राजधर्म के दो पक्ष होते हैं। एक शासन धर्म, दूसरा युद्ध धर्म। तुलसी कृत श्रीरामचरितमानस में दोनों धर्मों का सुन्दर और सुरुचिपूर्ण वर्णन हुआ है। चूँकि तुलसीदास अपने पूर्ववर्ती शास्त्रों से अत्यन्त प्रभावित हैं। इसलिए राजधर्म के सम्बन्ध में महाभारतादि में उल्लिखित वर्णनों से वे काफी कुछ लेते हैं। युद्ध और शान्ति के प्रयोग जहाँ आए हैं कवि की लेखनी उसी प्रकार के भाव ग्रहण करती हुयी चली है। राजकीय अव्यवस्था के उत्पन्न हो जाने के परिणामस्वरूप उसे कैसे शान्त किया जाय, या किसी मतभेद का हल केवल युद्ध ही हो इन सब पक्षों पर तुलसीदास की दृष्टि नीतियों का अनुसरण करती है। राजा, प्रजा की रक्षा कर पा रहा है कि नहीं, प्रजा यदि राजा के शासन में दुःखी है तो राजा दुःख के कारण का पता करता है, ये सब बातें तुलसी के

राजधर्म के अन्तर्गत ही आती हैं। एक कथन द्रष्टव्य है— “राजा को इतने कठोर कर नहीं लगाने चाहिए कि जिससे व्यापारी करों से दुःखित होकर व्यापार के प्रति उदासीन हो जाएँ। यदि राजा से अरक्षित होकर प्रजा पापाचरण करती है तो उस पाप का चौथा भाग राजा को लगता है। जिस राजा के राज्य में स्नातक क्षुधा से पीड़ित है वह राष्ट्र विकसित नहीं हो सकता है और उसमें अराजकता फैल जाती है। जिस राष्ट्र से विलाप करती हुयी स्त्रियाँ बलपूर्वक अपहरण कर ली जाती हैं और पुत्र रोते रह जाते हैं उस राजा को मृतक समझना चाहिए। वह जीवित नहीं है। इसी प्रकार जो राजा सदैव मृदु रहता है, उसकी आज्ञा का पालन नहीं होता तथा जो अत्यन्त कठोर होता है उससे प्रजा उद्विग्न हो जाती है। अतः राजा में कोमलता और कठोरता दोनों का समावेश तथा समयानुसार उनका प्रयोग करने की विशेषता होनी चाहिए।”¹⁵ श्रीरामचरितमानस में उपर्युक्त बातों का जिक्र किसी न किसी बहाने होता रहा है। तुलसी की समकालीन राजनीति मुगल राजनीति थी। उपर्युक्त सभी नीतियों का पालन असंभव था। तुलसी का असन्तुष्ट कवि मन कह उठता है—

गोंड गँवार नृपाल कलि यवन महा महिपाल।

साम न दाम न भेद अब केवल दण्ड कराल।।

कलियुग और लोकपीड़ा

कलिकाल वर्णन के समय तुलसीदास का कविमन जिस व्यथा को व्यक्त करता है उसमें युगबोध का यथार्थ भी है। तुलसीदास परिवेश की सतह पर चलते हैं। युग के समानान्तर चलने के कारण आज भी वे प्रासंगिक बने हुए हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगों में धर्म अपने स्वरूप को बदलता रहा। तुलसी को पूर्व युग में झांकने की आवश्यकता क्यों पड़ी? रामराज्य की सुरम्य कल्पना में कवि डूबना क्यों चाहा? सच्चाई के साथ कल्पना को मिश्रित करने की चेष्टा क्यों करनी पड़ी? केवल कलिकाल का वर्णन ही नहीं, बल्कि



रामराज्य की स्थापना भी कवि की उपादेयता थी। कलियुग का कवि जब अपने सन्तानों से विकल हो जाता है ताँ त्रेतायुग में चला जाता है। शायद, वहाँ उसे कुछ शान्ति मिल सके। तुलसी के यहाँ भी कलिकाल का दुष्प्रभाव धर्म पर ही पड़ता है— कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ। दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।।35 तुलसी की नजर में यदि कलियुग को पाप युग कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा। चूँकि कलियुग ने धर्म को ग्रस लिया। धर्म के ग्रसे जाने के परिणामस्वरूप सदग्रन्थों (शास्त्र, पुराण आदि) का लोप शुरू हो गया। चूँकि मुगल शासन में और उससे पहले तथा बाद में भी विचारवाद की लड़ाई से मतवादों का जन्म हुआ। ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए इस प्रकार के वैचारिक मतभेदों से उत्पन्न जो वाद थे वे तुलसी को नहीं रूचते। इसके पीछे भी वे कलियुग का दुष्प्रभाव ही देखते रहे। धीरे-धीरे युग ज्ञान-विज्ञान की ओर अग्रसर हो ही रहा था फिर भी तुलसीदास ने एक निराशापूर्ण अवसादग्रस्त और अंधकारमय युग के रूप में कलियुग को देखा। आगे तुलसी ने पुनः कहा— भये लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म। सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म।।36 यदि ऐसा होना युग का प्रभाव है अर्थात् सभी लोग मोह के वश में हो गये हैं, शुभ कर्मों को लोभ ने ग्रस लिया है तो जब कैकेयी लोभ के वशीभूत होकर भरत के लिए राज्य माँग रही थी और श्रीराम के लिए वनवास तब तो कलि का प्रभाव नहीं था। फिर कैकेयी ने ऐसा क्यों माँगा? हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई।।37 मेरा कल्याण तो सीतापति प्रभु श्रीराम की सेवकाई में है, सो उसे माता की कुटिलता ने छीन (हर) लिया। माता के प्रति पुत्र का यह कथन सबसे बड़ा प्रमाण है। भले ही तुलसीदास इसे विधाता की करनी पर मढ़ रहे हों—

विधि कैकई किरातिनि कीन्हीं। जेहिँ दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्हीं।।38 कुछ भी हो कलिकाल वर्णन के समय तुलसीदास युगबोध की सीमा में आबद्ध होकर जिस

सच्चाई अकाल, दुर्भिक्ष आदि का विवरण देते हैं वह दृष्टव्य है। किन्तु तुलसीदास ने कलियुग को जिम्मेदार ठहराया यहीं थोड़ा अनुचित सा लग रहा है। चूँकि सदबुद्धि और कुबुद्धि ये किसी काल विशेष की उपज नहीं होते। ये प्रत्येक युग में अपनी उपस्थिति कायम रखते हैं। कहीं पर परिस्थितियाँ सदबुद्धि के पक्ष में होती हैं तो कहीं पर कुबुद्धि के पक्ष में। तुलसीदास मुगलकाल के रंगमंच पर दरबारी संस्कृति की जो पटकथा प्रस्तुत करते हैं कल्पना और यथार्थ का समानुपातिक मिश्रण है। यदि एक तरफ कलिकाल का भयावह रूप है तो दूसरी तरफ रामराज्य की आनन्दमय स्थापना। मेरा मन्तव्य तुलसीदास के कलि वर्णन की यथार्थता को चुनौती देना नहीं, बल्कि उसके औचित्य पर विचार करना है। तुलसी कवितावली और रामचरितमानस दोनों के उत्तरकाण्ड में कलियुग का वर्णन करते हैं। कवितावली में तो काशी की महामारी भी दारुण अवस्था को प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल होती है। तुलसी ने राम के “शक्ति-स्वरूप” को चुना। शील, सौन्दर्य और शक्ति में से शक्ति के द्वारा ही वे रक्षक बन सकते हैं। “मानस” के कलिकाल वर्णन की अपेक्षा कवितावली का कलिवर्णन यन्त्रणा-भोग को अधिक स्पष्ट कर देता है। मानस के कलि वर्णन में धर्म की विकृति प्रमुख रूप से सामने आती है जबकि कवितावली के कलि वर्णन में आर्थिक विकृति के साथ-साथ सामाजिक एवं पारिवारिक विकृति भी स्पष्टतः दिखायी देता है। कलि में वर्णित तद्युगीन समाज का एक समूचा दृश्य सामने तब प्रस्तुत होता है जब तुलसीदास कहते हैं— वेद-पुराण बिहाइ सुपंथु, कुरग, कोटि कुचालि चली है। कालु कराल, नृपाल कृपाल न, राजसमाजु बड़ाई छली है।।39 बर्न-विभाग न आश्रमधर्म, दुनी दुःख-दोष-दरिद्र-दली है। स्वारथ को परमारथ को कलिराम को नाम प्रतापु बली है।। तुलसी की बड़ी समस्या वेद-पुराण के मार्ग की अवहेलना है। चूँकि तुलसी का जो शास्त्र तत्त्व है वह यही वेदशास्त्र ही है जो वेदविहित मार्ग का अनुपालन नहीं कर सकता वह तुलसी को प्रिय नहीं हो सकता। लोक और शास्त्र



का ऐसा समन्वित स्वरूप देखकर ही रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं – “भाखा” में काव्य रचना करके वे लोक में प्रिय होते हैं और शास्त्रीय मर्यादा का निर्वाह करके क्रमशः पण्डितों में 40 शास्त्रीय मर्यादा का निर्वाह कलि के प्रभाव से नहीं हो पा रहा है। “वर्ण-विभाग” और आश्रम धर्म की चिन्ता उन्हें परेशान किए रहती है।

निष्कर्ष:

कहा जा सकता है कि कवितावली के उत्तरकाण्ड में तुलसी ने राम की भक्ति, युग का यथार्थ (कलि वर्णन के रूप में) स्वयं के जीवन की विक्षुब्धता सबको एक साथ प्रस्तुत करने में सफल होते हैं। तुलसीदास को एक ही साथ कई चीजें चुभ रहीं थी। सत्ता के लगान और कर से परेशान गरीब जनता की स्थिति ही अन्नहीन किसानों के रूप में तुलसी को दिखायी देता है। तुलसीदास जातीय दर्प से कितने दूर हैं यह उपर्युक्त छन्दों से पता चल जा रहा है। अर्थात् किसान की दारुण दशा के बाद उन्हें तद्युगीन प्रताड़ित करने वाले लोगों की बात चुभती है। ऐसी ही तमाम सामाजिक और वैयक्तिक यातनाएँ तुलसी झेलते रहे और अपनी रचनाओं में बयाँ करते रहे। जो कहीं न कहीं कलि-काल का लोकपीड़क रूप धारण कर लेती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

तुलसीदास-माताप्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 7वाँ संस्करण-2005, पृ0सं0 223

रामललानहछू-दूसरा छन्द रामनारायण लाल अरूण कुमार प्रकाशन 2 कटरा, इलाहाबाद

रामललानहछू-5वाँ छन्द रामनारायण लाल अरूण कुमार प्रकाशन 2 कटरा, इलाहाबाद

रामाज्ञा-प्रश्न-गीताप्रेस गोरखपुर।

तुलसीदास-माताप्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 7वाँ संस्करण-2005, पृ0सं0 230

तुलसीदास-माताप्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 7वाँ संस्करण-2005, पृ0सं0 232

पार्वती-मंगल-गीताप्रेस गोरखपुर, 5वाँ छन्द

पार्वती-मंगल-गीताप्रेस गोरखपुर, 9-10वाँ छन्द

तुलसीदास-माताप्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 7वाँ संस्करण-2005, पृ0सं0 235

गीतावली-गीताप्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड, छन्द सं0 01

गीतावली-गीताप्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड, छन्द सं0 102

गीतावली-गीताप्रेस, गोरखपुर, अयोध्याकाण्ड, छन्द सं0 1

श्रीकृष्ण गीतावली-गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0सं0 29

हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली-संस्करण नवीनतम, पृ0सं0 124

तुलसीकाव्य मीमांसा, उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, इलाहाबाद दूसरा संस्करण-2002, पृ0सं0 64

जानकीमंगल-गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ0सं0 15

तुलसीकाव्य मीमांसा, उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, इलाहाबाद दूसरा संस्करण-2002, पृ0सं0 106

कवितावली बालकाण्ड, पृ0सं0 1, गीताप्रेस, गोरखपुर

तुलसी आधुनिक वातायन से – रमेश कुन्तल मेघ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0 238-239

भक्ति-काव्य यात्रा- रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण 2003 (पृष्ठ सं0 13), लोकभारती प्रकाशन



हिन्दी साहित्य का इतिहास— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,
नवीनतम् संस्करण कमल प्रकाशन नई दिल्ली, (पृष्ठ सं०
53)

उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ एवं प्रकाशन।

उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ एवं प्रकाशन।

उपर्युक्त पुस्तक एवं प्रकाशन (पृष्ठ 54)

तुलसीदासः सम्पादित — डॉ० वासुदेव सिंह, अभिव्यक्ति
प्रकाशन इलाहाबाद (पृष्ठ सं० 117) पुनर्मुद्रण 2010

संस्कृति के चार अध्याय— रामधारी सिंह दिनकर,
लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद (पृष्ठ सं० 276) तीसरा
संस्करण 2010

हिन्दी साहित्य का इतिहास— संपादित: डॉ० नगेन्द्र डॉ०
हरदयाल, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली (पृष्ठ
सं० 164)